
अभी ज़ुबां कटी नहीं
तेवरी संग्रह
सम्पादक · रमेशराज
दंगा
पुलिस
करफ्यू

अभी जुबां कटी नहीं

[तेवरी- संग्रह-१]

संपादक–रमेशराज

प्रकाशक –
सार्थक – सृजन
१५/१०६, ईसा नगर
अलीगढ़– २०२००१

प्रथम संस्करण – 750, फरवरी – १९८३

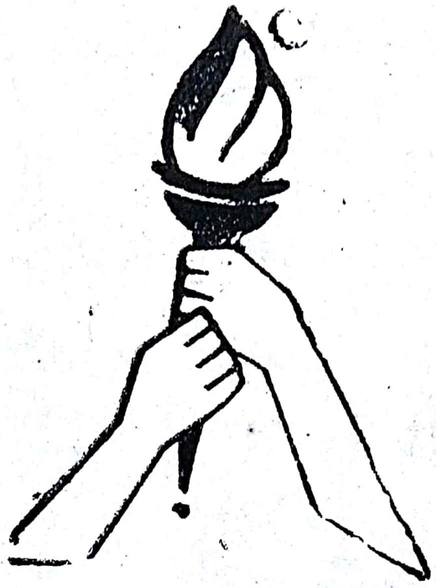
मूल्य – आठ रुपये

आवरण– स्वामी चन्द्र मौलि

संपादक– रमेशराज

मुद्रक – इन्डियन प्रिन्टर्स जयगंज रोड अलीगढ़ – २०२००१

वितरक– विबेक प्रकाशन
३/३६४ समद रोड, अलीगढ़ – २०२००१



महान क्रान्तिकारी

श्री राम प्रसाद 'बिस्मिल को

सादर, सप्रेम

पृष्ठभूमि

आदि काल से शोषक वर्ग आम आदमी को लूटता, आम की तरह चूसता रहा है, और यह शोषण का सिलसिला आज तक जारी है। शोषक वर्ग ने अपने को सुरक्षित रखने, वर्ग विस्तार करने, अपना प्रभुत्व स्थापित करने, सुविधाएं, ऐशोआराम भोगने, सत्ता छिनने के खतरे से बचने, बाजीगरों की तरह चालाकी के साथ जनता की जेब कतरने, अपने गोदामों को सोने चांदी से भरने, आदमी को नपुंसक, नाकारा, भाग्यवादी बनाने तथा शोषण को स्थायित्व देने के लिये, आम आदमी के खिलाफ एक षड्यन्त्र रचा जिसका नाम था धर्म, जिसका नाम था ईश्वर।

इस षड्यन्त्र की नींव पड़ी वैदिक काल में और फिर धीरे-धीरे साम्राज्यवादी शक्तियां अपना प्रभुत्व जमाती चली गयीं। इन शक्तियों ने अपने को और अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये धर्म ग्रन्थों का योजनाबद्ध तरीके से सृजन किया और उसे जनता को अफीम की तरह चटा दिया, ताकि वह विचारलुंज, भाग्यवादी, अन्धविश्वासी होकर हाथ पर हाथ

रखकर सिर्फ अच्छे दिनों का इन्तजार करती रहे। पूर्वजन्म के पापों का प्रायश्चित करती रहे। दूसरी तरफ राजा महलों में सुरासुन्दरी का स्वाद चखते रहें। जनता की खून पसीने की कमाई खजाने में भरते रहें।

सम्राटों सामन्तों की काली करतूतों, जन विरोधी नीतियों, अत्याशियों, साजिशों का पर्दाफाश न हो जाये, इसके लिये उन्होंने तत्कालीन कवियों को राजाश्रय देकर भाट बनाम् ताली पीटने वाले हिजड़ों में तब्दील कर दिया, ताकि वे जनता के सामने सच्चाइयां न उगल कर सिर्फ ऐसे साहित्य का सृजन करें, जिससे साम्राज्यवादी शक्तियों को पुष्टिकरण मिले। वेद रचयिताओं से लेकर 'व्यास', 'तुलसीदास'. 'बिहारी'. 'विद्यापति', 'कालीदास', 'हरिऔध', रत्नाकर', तक पूरी की पूरी कवियों की जमात कुछ इसीतरह की साजिशों में संलग्न रही। जिसके परिणाम स्वरुप आम आदमी 'होगा वही राम रचि राखा', 'सबहि नचावत राम गुसाईं', 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' जैसे अन्ध विश्वासों की अफीम लगातार चाटता चला गया। पूर्वजन्म के पाप की धारणाएं, दैवीय मान्यताएं शोषकों को शोषण के लिये खुली छूट देती चली गयीं।

खैर यह बात थी उस समय के साहित्यकारों की [जिन्हें साहित्यकार कहने में भी शर्म आती है]। आधुनिक साहित्य की भी लगभग यही स्थिति रही है। कुछेक अपवादों को छोड़ कर आज भी साहित्यकार सरकार की जी हुजूरी कर रहे हैं। इनाम पारहे हैं। पुरस्कारों, उपाधियों से अलंकृत हो रहे हैं, पाठ्य पुस्तकों में स्थान पा रहे हैं, और ऐसे साहित्य का सृजन कर रहे हैं, जो जनघातक ही नहीं, जनहिंसक भी है।

अभी जुबां कटी नहीं।

कहने का अर्थ यह है कि जब भी साहित्य सामाजिक संदर्भों, हितों से हटकर या कटकर लिखा जाता है, वह अधिकांशतः सामाजिक अहित ही नहीं करता, सत्ताधारियों, जन विरोधियों की काली करतूतों पर पर्दा भी डालता है। आज की तथाकथित महान कविता के प्रवर्त्तकों में चाहे छाया वादी युगीन 'पन्त' या प्रतीकात्मक नयी कविता के जनक 'अज्ञेय' रहे हों। सब के सब सत्ता की थैली के चट्टे बट्टे रहे हैं। जिन्होंने माफगोई के खतरे न उठाकर सिर्फ पदक बटोरे, जमूरों वाली शैली अपनाकर बाजीगरों की जी हुजूरी की।

इस गन्दे साहित्य के साथ-साथ हर युग में एक ऐसे साहित्य का भी सृजन हुआ, जो जन हितकारी था। कुसत्ता द्रोही था। जिसमें अभिव्यक्ति के खतरे उठाये गये थे। 'कबीर' महा प्राण 'निराला', 'धूमिल', 'गजानन माधव' मुक्तिबोध, 'नागार्जुन'; आदि-आदि कुछ ऐसे नाम हैं; जिन्होंने जनविरोधी शक्तियों के खिलाफ क्रान्ति की एक अमर मशाल जलाई।

उसी मशाल को लेकर हम भी 'तेवरी' के माध्यम से शोषक, जनद्रोही प्रवृत्तियों के खिलाफ एक आन्दोलन, एक जन क्रान्ति एक संघर्ष की शुरुआत कर रहे हैं। शोषित सर्वहारा वर्ग के भीतर छुपी हुई विद्रोह की आग को तलाश रहे हैं। आदमी को आदमखोरों के विरुद्ध खड़ा करने का प्रयास कर रहे हैं।

इस भूमिका को पढ़ते-पढ़ते पाठक मन पर एक प्रश्न उभरना स्वाभाविक ही है— 'आखिर तेवरी है क्या' ? इसे समझाने के लिये हम अपनी बात गजल से शुरु कर रहे हैं। गजल का अर्थ है प्रेमिका से बातचीत।

सामन्त युग में राजा महाराजाओं को खुश करने के लिये उर्दू शायर बनाम् भाट गजलों में औरत के जिस्म की खूबियाँ बखान कर–कर के राजमहलों में महफिलों की रौनक बढ़ाया करते थे, अशर्फियां बटोरा करते थे। कुल मिलाकर गजल अय्याशों के लिये एक मनोरन्जन का साधन थी। साथ ही शायरों की रोजी, रोटी, धन दौलत लूटने की एक चाटुकारी प्रवृत्ति। कहने का मतलब यह है, इसका आम आदमी की समस्याओं, सामाजिक यथार्थ या जनहित से कोई वास्ता नहीं था, इसी कारण यह विधा नंगी जांघों के जंगल में भटक कर रह गई। जिसमें सुर्ख गालों पर चुटकियाँ थीं। मख्मूर आँखों की मदिरा थी, बाहों के झूले थे, शोखी थी, नजाकत थी। कुल मिलाकर आदमी को पथभ्रष्ट करने का पूरा साजो-सामान थी गजल।

लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अंग्रेजों के भारतीयों पर अत्याचारों, दमन, शोषण, कुशासन ने गजल के तेवर बदलने शुरु कर दिये। और यहीं से हुआ तेवरी का जन्म। जिसने अंग्रेजों के खिलाफ, एक संघर्ष एक इन्क्लाब; एक विद्रोह, एक जन चेतना की शुरूआत की। 'रामप्रसाद बिस्मिल' की गजलें कुछ इसी प्रकार की थीं, जिनसे तेवरीपन की एक बारूदी बू आती है—

'सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजू ए–कातिल में है॥

इस के बाद तेवरी 'साहिर लुधियानवी' 'नीरज', 'शेर जंग गर्ग' 'बलवीरसिंह रंग', 'केदार नाथ कोमल', 'जहीर कुरैशी', 'कुबेर दत्त', 'सूर्य भानु गुप्त' आदि के हाथों में पलकर बड़ी होती गई। स्व० दुष्यन्त कुमार ने अभी जुबां कटी नहीं।

तो आपात काल में तेवरी के सीने में तिलमिलाते विद्रोह के ज्वालामुखी भर दिये। उसके हाथों में शब्दों के डाइनामाइट थमा दिये।

तेवरी जन्म के बाद लगातार जवान तो होती गई, लेकिन हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य यह रहा कि इसके नामकरण की आवश्यकता किसी भी कवि ने नहीं महसूसी। पांच-छह दशक गुमनामी का जीवन जीते-जीते नवें दशक में इसका नामकरण हुआ 'तेवरी। इस सन्दर्भ में ऋ० देव शर्मा 'देवराज' का नाम विशेष उल्लेखनीय माना जा सकता है।

यह बात सत्य है कि तेवरी की जननी गजल है। और इसी कारण उसके बहुत से गुण जैसे छन्द, शिल्प आदि बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। लेकिन यदि सन्तान को भी मां के नाम से पुकारा जाय, यह कहां तक उचित है! या हम अपनी बात यूं स्पष्ट करें, यदि एक विषभरी शीशी को खाली करके उसमें अमृत भर दिया जाय, मगर उसके ऊपर से विष का लेबल न छुड़ाया जाये, ऐसे में क्या लोग अमृत को अमृत की मानसिकता के साथ गले उतार सकेंगे? क्या उन्हें अमृत भी जहर नहीं दिखाई देगा? उत्तर स्पष्ट है हाँ। कुछ इसी तरह की दुर्गति गजल के साथ जुड़ी हुयी है। इसी कारण गजल और तेवरी की स्पष्ट व अलग-अलग पहचान कराना नितान्त आवश्यक हो गया है।

तेवरी जिस जमीन पर पैदा हुयी, खड़ी हुयी बड़ी हुयी, वह खुरदरी पथरीली, कटीली, विषमताओं, संत्रास, शोषण, घुटन, कुंठाओं की त्रासद पग डंडियों से भरी हुयी है, जहां पक्षियों का शोर सुनाई नहीं देता, नदियां कल कल नहीं करतीं, फूल नहीं खिलते, बसन्त नहीं आता, बल्कि आदमी को खाकी

वर्दियां जूतों से कुचलती हैं, टोपियां माँ बहिनों की इज्जत पर डाके डालती है। बन्दूकें आग उगलती हैं। मजदूर का शोषण होता है। शोषक तोंदें फुलाते हैं। मूछों पर ताव देते हैं। आदमी की आंतों में सुविधा के नाम पर भूख की आरी चलती है। तस्करी, राहजनी, लूटा-खसोटी होती है। पर सत्ता के कान पर खबरों की जूं तक नही रेंगती। बल्कि विधायक स्वयं डकैतों, भ्रष्टाचारियों को संरक्षण देते हैं। बसन्त के नाम पर झूंठे वादों के नागफनी जंगल में भरमाते हैं। खुशबू के नाम पर सड़ांध दे जाते हैं।

तेवरी इस जमीन पर खड़ी होकर आदमी के खिलाफ हो रही साजिशों से आंखे नहीं मूंदती। यातनाओं, अत्याचारों, त्रासदियों, हादसों से भरे रास्तों से कतरा कर नहीं चलती। बल्कि वह जंगलों को काटती, छांटती हुयी आगे बढ़ती है, शोषक प्रवृतियों के खिलाफ जनचेतना लाती है, संघर्ष की बात कहती है।

अगर सही मानों में देखा जाय तो तेवरी आदमी की जिन्दगी में घुली तल्खियत का एक ब्यौरा है, जो पढ़ने या सुनने के बाद विचार और चिंतन के ऐसे बिन्दु पर ले जाती है, जहां से साजिशियों के खिलाफ आक्रोश की कुल्हाड़ियां उछालना आवश्यक हो जाता है।

जबकि गजल आरम्भ से लेकर अब तक मात्र अय्याशों, सामन्तों की जांघे सहलाती रही है। अपना खूबसूरत जिस्म दिखाकर रिझाती रही है। कांच की हवेलियों में पायल खनकाती रही है। उसने कभी भी फुटपाथ पर झोपड़ी की जिन्दगी की तरफ झांक कर नहीं देखा और अगर वहां आयी भी है तो नंगी जांघों का भूगोल पढ़ा गयी है। यही वजह है, तेवरी अपनी अभी जुबां कटी नहीं।

मां गजल से, व्यवहार से लेकर चालचलन तक एकदम भिन्न है। उसके एक-एक शब्द में चाकू जैसी मार है। अन्धविश्वासों, सामाजिक विसंगतियों विकृतियों, रूढ़ियों, कुआस्था, गन्दी राजनीतिक चालों के खिलाफ आक्रोश है, विद्रोह है, आक्रामकता है, बारूद जैसा विस्फोटक है, ब्लेड जैसी धार है, जो तन मन को आन्दोलित करती चली जाती है।

तेवरी गुस्सेल, आक्रामक, जुझारू संघर्षशील अवश्य है, लेकिन वह अनुशासनप्रिय है और ऐसा कोई रास्ता अख्तियार नहीं करती, जो गलत हो, भ्रामक हो, विध्वंसक हो। तेवरी व्यर्थ का रक्तपात भी नहीं चाहती है, वह आदमी के लिये सुख-सुविधा मांगती है। जर्द चेहरों की खुशहाली चाहती है, भूखे को रोटी की मांग करती है, ठन्डाये चूल्हे को आग, दाल-भात मांगती है। लेकिन इसके लिये सरकारी सम्पत्ति का विनाश नहीं करवाती, बसें नहीं तुड़वाती। तेवरी लड़ाई तो लड़ती है, क्रान्ति तो करती है लेकिन हक की, शांति की, अहिंसा की। वह गुस्से को सार्थक सृजन में लगाती है, आदमी को आदमी बनाती है।

आज जबकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक भयंकर उथल–पुथल शुरू हो गयी है। शोषक और शोषित का एक तीखा वर्ग संघर्ष संक्रामक रोगकी तरह पनप रहा है, स्थापितों और विस्थापितों के राजनीतिक हथकंडे आदमी को एक तल्खियत से सराबोर कर रहे हैं आदमी कुंठा, घुटन, संत्रास उत्पीड़न से पनपे आक्रोश को अपने भीतर कोढ़-सा महसूस रहा है। एक सड़ांध भरी व्यवस्था में हम सब जिये चले जा रहे हैं। एक दिशाहीनता हम सब पर हावी होती चली जा रही है। नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक

आर्थिक मूल्य टूट रहे हैं। आदमी को पूर्वजों से विरासत में मिले धार्मिक अंधविश्वास धर्म के ठेकेदारों के लिये शोषण, तस्करी, लूटाखसोटी के साधन बने हुये हैं। ईश्वर के नाम पर चकले चल रहे हैं। भ्रष्टाचार हो रहा है। शासक जनद्रोही हो गये हैं। समाजवाद की अच्छीखासी घोषणाओं के बावजूद आजादी के इन पेंतीस सालों में समाजवाद न आ सका, जन खुशहाली न आ सकी। आजादी का अर्थ सिर्फ नौकरशाही भ्रष्टाचार, नेताओं के टुच्चे भाषण देने, जनता का पैसा डकारने, जनविरोधी विधेयक लाने, साम्प्रदायिक दंगे भड़काने, पुलिस द्वारा महिलाओं की इज्जत लुटवाने लाठी चार्ज कराने, तस्करी करने, गरीबी उन्मूलन के नारे देकर पूंजीवाद को बढ़ावा देने, कालाधन कमाने और कमवाने की आजादी बनकर रह गया। जिससे न सिर्फ सामाजिक मूल्य टूटे ही, बल्कि बीभत्स, घिनोने होते चले गये। स्वार्थों के कुंड में स्वाहा होते चले गये। आदमी, आदमी न रहकर शैतान बन गया।

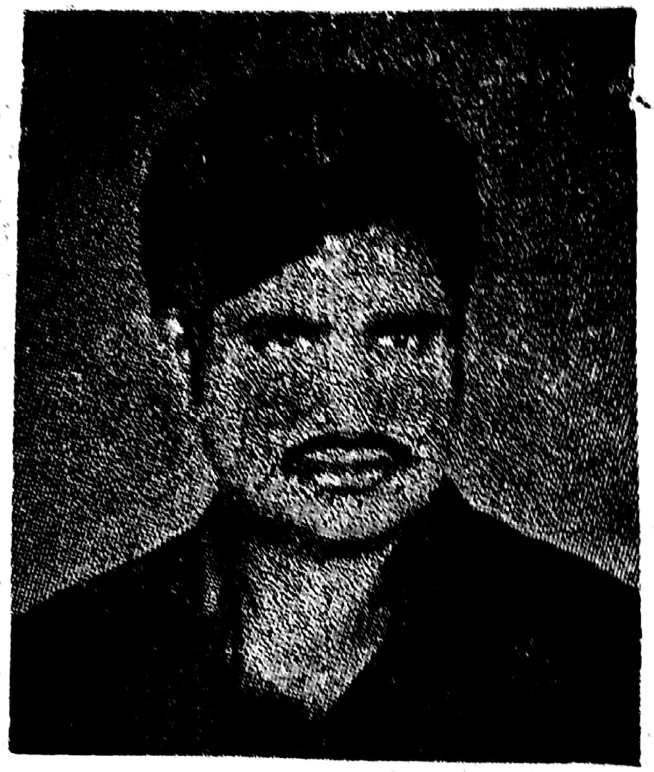
ऐसे में प्रस्तुत तेवरी संग्रह 'अभी जुबां कटी नहीं' के तेवरीकारों की तेवरी जन विरोधी प्रवृत्तियों को बेनकाब ही नहीं करेंगी, उन्हें चौराहे पर घसीट कर उनकी असलियत भी खोलेंगी, साथ ही पाठक वर्ग को उनकी त्रासद स्थितियों से साक्षात्कार कराती हुयी किसी हल की ओर मोड़ेंगी, इस विश्वास के साथ.........

रमेशराज

१५/१०९, ईसा नगर

अलीगढ़–२०२००१

अरुण लहरी



जन्म – ८ मई, १९५६, कानपुर

शिक्षा – स्नातकोत्तर, (समाज शास्त्र)

लेखन – कविताएं

सम्प्रति – संघर्ष

संपर्क – टीकाराम बिल्डिंग, आगरा रोड, अलीगढ़।

रचना प्रक्रिया – देश चेतना-शून्य होता जा रहा है, चील, गिद्ध, कौवे उसे नोच-नोच कर खा रहे हैं। ऐसे में मेरी कविता गुलेल का काम करे, यही प्रयास रहता है।

(एक)

भ्रष्टाचार धर्म है उनका
दुर्व्यवहार धर्म है उनका ।

बेच रहे हैं वे सौगंधें
अब व्यापार धर्म है उनका ।

वे सुर्खी – दर – सुर्खी में हैं
बस अखबार धर्म है उनका ।

राखी, रिश्ता वे क्या जानें ?
यौनाचार धर्म है उनका ।

देश लुटे, उनको क्या चिन्ता ?
कुर्सी – प्यार धर्म है उनका ।

डूबेगी हर नाव यकीनन
बस मंझधार धर्म है उनका ।

वे क्या जानें जनहित यारो !
नर संहार धर्म है उनका ।

लड़वाते हैं हिंदू – मुस्लिम
रक्ताहार धर्म है उनका ।

(दो)

कुंठित हर इंसान है भइया
सीने में तूफान है भइया।

हर चेहरा बस नीलकंठ है
करता अब विषपान है भइया।

दर-दर भटके शिक्षित यौवन
कितना परेशान है भइया?

अब तो सुख की कोई चिड़िया
भरती नहीं उड़ान है भइया।

इन सदनों में हर-एक चेहरा
कितना बेईमान है भइया?

घूम रहा ओढ़े चिथड़ों को
अपना हिंदुस्तान है भइया।

सब व्यभिचारी पाप ढ़ो रहे
कैसा कुम्भ-नहान है भइया?

सिर्फ समाजवाद आने तक
अटकी अपनी जान है भइया।

अभी जुबां कटी नहीं।

(तीन)

खादी आदमखोर है लोगो !
हर टोपी अब चोर है लोगो !

सत्ता उनके हाथों में है
उन पर किसका जोर है लोगो ?

उनने किया हलाल सब जगह
संविधान का मोर है लोगो !

जाने कैसी चली हवा ये
दुखती पोर–पोर है लोगो !

हर बर्दी खूनी है अब तो
गली गली में शोर है लोगो !

कह कर मुकर जाए बातों से
हर नेता शहजोर है लोगो !

लदी हुई आंसू से हरदम
अब काजल की कोर है लोगो !

सब गिनते हैं अंतिम सांसें
टूटी जीवन–डोर है लोगो !

(चार)

हमने देखी उल्फत उनकी
हर-इक छलिया आदत उनकी।

जहर दवा के नाम से बेचें
देख लीजिए हिकमत उनकी।

उनने डाला सच पर पर्दा
हुई इस तरह शोहरत उनकी।

वे अब नागों को पाले हैं
हर सीने में दहशत उनकी।

हर आंचल की खुशहाली को
खा जाती है वहशत उनकी।

हर मेले में, हर जलसे में
सदा मिलेगी शिरकत उनकी।

वे क्या जाने दर्द हमारा ?
हुई कभी ना फुरसत उनकी।

आज बना डालो तुम यारो
चौराहों पर तुरबत उनकी।

(पांच)

हर नैया मँझधार है प्यारे !
टूट गई पतवार है प्यारे !

हर कोई भूखा नंगा है
ये कैसी सरकार है प्यारे ?

उन पेड़ों का ओ पंछी सुन !
हर पत्ता खूंखार है प्यारे !

शिक्षा पाकर बी०ए०, एम०ए०
हर कोई बेकार है प्यारे !

यहाँ स्वार्थ का और झूठ का
अब स्वागत, सत्कार है प्यारे !

सरकारी दफ्तर में देखो
कितना भ्रष्टाचार है प्यारे ?

लूट, डकैती छाप रहा है
अब तो हर अखबार है प्यारे !

आज व्यवस्था का ये पग-पग
हर सीने पर भार है प्यारे !

(छः)

इस तरह के वे विधेयक आजकल लाने लगे हैं
लोग अपना मुल्क कहने में भी शरमाने लगे हैं।

सत्य की तकरीर देती हैं यहाँ पर टोपियाँ
दर–हकीकत इस तरह वे हमको भरमाने लगे हैं।

घुल गया है इन हवाओं में जहर कुछ इसतरह
साँस लेने में भी अब तो लोग घबराने लगे हैं।

पूछिए मत किस तरह का अब यहाँ पर है निजाम ?
आजकल हर शख्स की वो खाल खिचवाने लगे हैं।

आगया हैं वक्त अब झुक जायेंगे पर्वत सभी
सिंधु के उफान अब चोटी से टकराने लगे हैं।

देखकर आक्रोश सड़कों पर उतरता आजकल
कुर्सियां हिलने लगीं, कुछ लोग घबराने लगे हैं।

हर नदी निशान से ऊपर उठी है दोस्तो !
आजकल तटबंध सारे खौफ में आने लगे हैं।

किसतरह पायेंगे काबू आग पर वे लोग अब ?
हिमखण्ड भी ज्वालामुखी–से ताव दिखलाने लगे हैं।

अभी जुबां कटी नहीं।

(सात)

हम सुनहरे कल की ओर बढ रहे हैं आजकल
स्वार्थ की कुछ सीढ़ियों पर चढ़ रहे हैं आजकल।

पक्ष औ' प्रतिपक्ष की कैसी सियासत हो गयी ?
जंग कुर्सी की सभी तो लड़ रहे हैं आजकल।

देखिए उनकी प्रगति का ढंग अपने देश में
लाखों टन अनाज यूं ही सड़ रहे हैं आजकल।

कितना ऊंचा उठ गया है शिक्षा – स्तर दोस्तो !
परदेश में बच्चे उन्हीं के पढ़ रहे हैं आजकल।

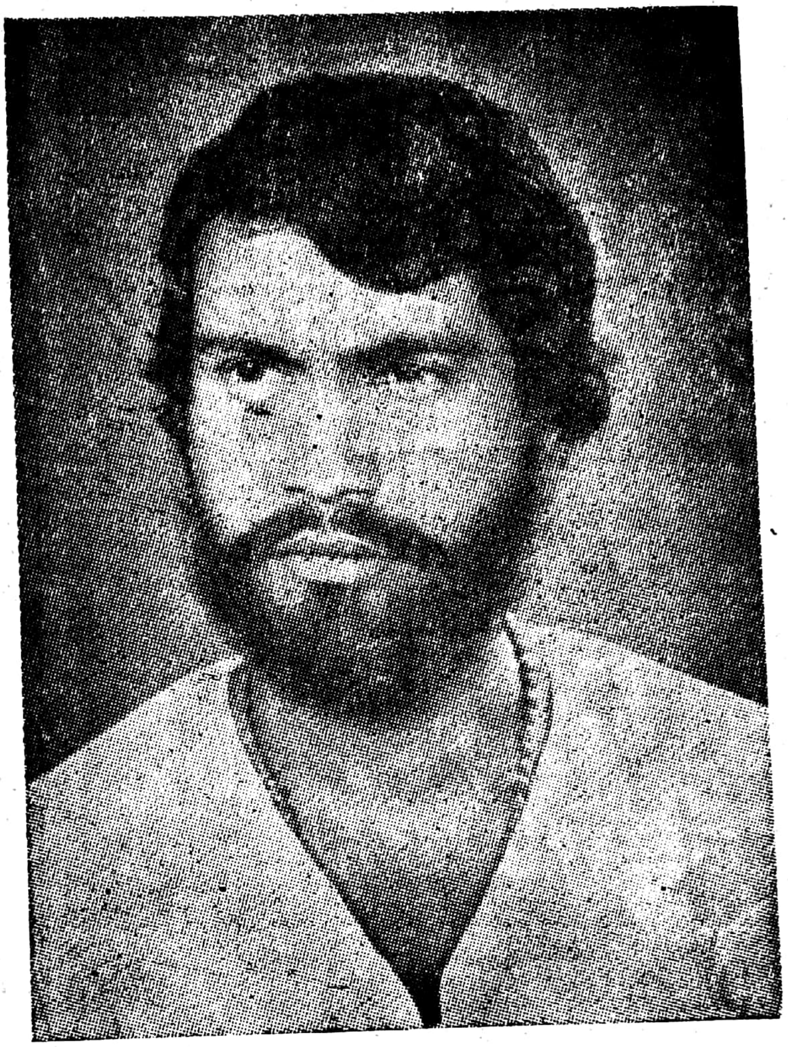
इस तरह उन ने भरा साहस सभी में यार अब
हर शहर, हर गांव डाके पड़ रहे हैं आजकल।

जेब, कतरे आदमी की हर जगह बाजीगरी
इस तरह के वे शगूफे गढ़ रहे हैं आजकल।

तस्करी, कालाबज़ारी में सने हैं उनके हाथ
देश की तस्वीर कैसी मढ़ रहे हैं आजकल ?

योजना, परियोजना की फाइलों के देखिए
कागजी घोड़े सभी तो अड़ रहे हैं आजकल।

अजय अंचल



जन्म – १२ फरबरी, १६५५, अलीगढ़

शिक्षा – हाई स्कूल

लेखन – कविताएं

सम्प्रति – नक्शा नवीस

संपर्क – कटारी वालान जयगंज, अलीगढ़

रचना-प्रक्रिया – यहां हर चीज बिकाऊ है, यहां तक कि ईमान भी। लेखन और समाज के प्रति ईमानदारी बरतता हूं तो बड़ी संतुष्टि मिलती है

(एक)

इस तरह मिलने लगा है प्यार, कोई क्या करे ?
हर गली में देह का व्यापार, कोई क्या करे ?

चीखने से फायदा क्या ?, और कोई बात कर
आजकल गूंगी हुई सरकार, कोई क्या करे ?

हो न जाए हादिसा ऐ यार पुल की पीठ पर
टूटने के हो गए आसार, कोई क्या करे ?

पेट में रोटी नहीं, तन पर कोई कपड़ा नहीं
अब किसी के वास्ते श्रृंगार, कोई क्या करे ?

एक मुठ्ठी अन्न भी होता नहीं हमको नसीब
आजकल मेहमान का सत्कार, कोई क्या करे ?

क्या कोई रुक कर करेगा ? आज इस छत के तले
हर खुशी है रेत की दीवार, कोई क्या करे ?

कुर्सियाँ सिखला रहीं हैं आदमी को देखिए
हर कदम पर इक नया व्यभिचार, कोई क्या करे ?

हर सदन अब मुल्क में देख ले 'अंचल' यहाँ
तस्करों का हो गया दरबार, कोई क्या करे ?

(दो)

हर जगह भूखी खड़ी है जिन्दगी ; अब देखिए
आदमी को छल रही है रोशनी , अब देखिए ।

जिस्म नंगे हो गये इस मुल्क में , अब क्या कहे ?
लोग इसको कह रहे हैं सादगी , अब देखिए ।

लग रहा है आज हमको हर खुदा बहरा हुआ
थक गये घंटे , सिसकती आरती, अब देखिए ।

चाँदनी ने आदमी के जिस्म छलनी कर दिये
क्या खिलाए गुल यहां पर धूप भी, अब देखिए ?

कल कोई सुकरात-सा कहने को सच होगा खड़ा
इसलिए पीने लगी है विष सदी. अब देखिए ।

इन मृगों की , मेंमनों की हाय रे अब खैर हो
घूमती जंगल में हिंसक शेरनी, अब देखिए ।

धर दबोचा भूख ने अब हर शहर हर गांव को
हर जगह है आजकल यह त्रासदी , अब देखिए ।

जिन्दगी में हर खुशी की अंचल' अब बन कर कहार
दर्द लेकर चल रहे है पालकी ,अब देखिए ।

अभी जुबां कटी नहीं ।

(तीन)

रहनुमा सैयाद होते जा रहे हैं देश में
भेड़िये आबाद होते जा रहे हैं देश में

गौतम जिन्हें हमने कहा इस सदी में दोस्तो
आज वो जल्लाद होते जा रहे हैं देश में।

बन सके न आदमी जो आदमी के बीच में,
ईश की औलाद होते जा रहे हैं देश में।

शौक जिनको भी रहा है मुस्कराने का यहां;
और भी नाशाद होते जा रहे हैं देश में।

इस तरह आई यहां पर हर जगह फस्ले बहार
सुख सभी अवसाद होते जा रहे हैं देश में।

इस निजामे बेबसी में वक्त के अहसास सब
दर्द की तादाद होते जा रहे हैं देश में।

कल खिलेगा इस जगह हंसता हुआ कोई गुलाब,
इसलिए हम खाद, होते जा रहे हैं देश में।

आदमी सहता रहा जुल्मो–सितम 'अंचल' मगर
जिस्म अब फौलाद, होते जा रहे हैं देश में।

(चार)

हर चीज ही अब तो नकल है यार अपने मुल्क में
ऐसा चर्चा आजकल है यार अपने मुल्क में।

कर के चोरी, रहजनी हो गये मुजरिम फरार
योजना उनकी सफल है यार अपने मुल्क में।

कत्ल कर मुंसिफ कहे जाते हैं कातिल आजकल
शैतान में बेहद अकल है यार अपने मुल्क में।

आज जैसे इक जरुरत-सी गरीबी हो गयी
भूख का कोई न हल है यार अपने मुल्क में।

आदमी अब तो यहां पर इक खुशी के नाम पर
पी रहा मीठा गरल है यार अपने मुल्क में।

वह करे विद्रोह आकर आज अपने साथ में
जिसमें मिरे बाजू-सा बल है यार अपने मुल्क में।

अब बदलना है जरुरी हर तरह इसका दिमाग
आदमी बस राशि-फल है यार अपने मुल्क में।

कल नजर आयेंगे चेहरे इन्कलाबी कुछ यहां
उग रही ऐसी फसल है यार अपने मुल्क में।

(पांच)

रात खुशियों की यहाँ ढलने लगी है बंधु अब
भावना हर शख्स की जलने लगी है बंधु अब।

रहनुमा जल्लाद सारे हो गये इस देश के
आबरू घुटनों के बल चलने लगी है बंधु अब।

बन गया है एक थाना आजकल घर के करीब
खौफ से दीवार तक हिलने लगी है बंधु अब।

आग पीड़ाओं की इतनी बढ़ गई है जेहन में
मोम-सी हर जिंदगी गलने लगी है बंधु अब।

इस व्यवस्था ने दिये, अनगिन जख्म इन्सान को
बात नारों की बहुत खलने लगी है बंधु अब।

हो गयीं इस देश में जनतंत्र की बातें बहुत
उनकी यह जादूगरी छलने लगी है बंधु अब।

जान की लेवा व्यवस्था हो गई है देश में
मूंग छाती पे यहां दलने लगी है बंधु अब।

अब कोई ज्वालामुखी दहकेगा हर इक जिस्म में
इक बगावत हर जगह पलने लगी है बंधु अब।

(छः)

पाप के आने लगे चेहरे उभर के सामने
साफ है तस्वीर अब उनकी नजर के सामने।

आ गया है वक्त अब व्यभिचारियों की खैर हो
आबरू उनकी लुटेगी उनके घर के सामने।

इस तरह घुट-घुट कें रोना छोड़ दे, हक छीन ले
कब तलक रोयेगा तू इस बेअसर के सामने।

बांध दे ताबीज कितने भी हमारी बांह पर
मुट्ठियाँ तन कर रहेंगी बाजीगर के सामने।

अब नहीं कोई लुटेगा कारवां इस मुल्क का
हम रखेंगे यह हकीकत राहबर के सामने।

एक मुट्ठी भी तनी गर अब बगावत के लिये
क्या झुकेगी वो किसी फिर शीशघर के सामने।

हौसले इसके अभी कुछ और भी होंगे बुलंद
आंधियां जितनी उठेंगी इस शजर के सामने।

वो किसी को लूट लें, पर यार हम खामोश हों
हो नहीं सकता कभी अपनी नजर के सामने।

अभी जुबां कटी नहीं।

(सात)

हर तरफ हैं आँधियाँ पर ज्योति जलनी चाहिए
शैतान की शैतानियत बस अब कुचलनी चाहिए।

नाखुदा मदहोश है, कश्ती भंवर में जा रही
डूब जायेगी यहाँ कश्ती सम्हलनी चाहिए।

पीर को पाला बहुत हमने हृदय के बीच में
हर बशर के दिल से यह बिल्कुल निकलनी चाहिए।

जो करो तुम आज ही, सोचो नहीं फौरन करो
बात कोई मन की अब, कल पै न टलनी चाहिए

चैन सारा डस गयीं, विषधर हुई यह टोपियां
विषबुझी कोई छुरी, इन पर उछलनी चाहिए।

एक जोकर-सा है अभिनय अब तुम्हारा मंच पर
आज तो इस मंच की बुनियाद हिलनी चाहिए।

हर किसी के दिल में हो, इक दहकता ज्वालामुखी
हर जगह अब आग-सी इक आग मिलनी चाहिए।

कब तलक यूं ही चलेगा रहनुमाओं का चलन
अब बगावत की यहाँ पर नींव डलनी चाहिए

अभी जुबां कटी नहीं

योगेन्द्र शर्मा



जन्म – २० जुलाई, १९५०, अलीगढ़

शिक्षा – एम० ए०, बी० एस० सी०

लेखन – कविताएं, कहानियां, लघुकथाएं, लेख

सम्प्रति – नौकरी

संपर्क – १९/८, कृष्णा पुरी, अलीगढ़

रचना-प्रक्रिया – समकालीन संदर्भों में जीवन अपने-आप में एक अजीबो-गरीब व्यंग्य बन कर रह गया है। यहां तक कि मुस्कराना भी एक त्रासदी जैसा लगता है। कविता इन्ही स्थितियों में जीते हुए जन्म लेती है।

अभी जुबां कटी नहीं।

(एक)

शहद लगाकर डिग्री को अब चाटिए श्रीमन् !
बेकारी की धूल यूंही फांकिए श्रीमन् !

हैं चपरासी की पोस्ट चाहते पी० एच० डी०
ग्रेजुएट हैं आप तो फिर भागिए श्रीमन् !

यूं हनूमान चालीसा पढ़ना व्यर्थ है
मंत्री जी की सोर्स कुछ तलाशिए श्रीमन् !

हां आप रहे हैं इक उन्मुक्त परिंदे पर
यूं यादों की एलबम मत झांकिए श्रीमन !

दे दे इन्टरव्यू फट गये जूते–चप्पल
लेके आये सिर्फ दर्द पर डाकिए श्रीमन् ।

बना दिया है बड़ा आदमी डैडी ने
बेकारी को हंस कर झेले जाइए श्रीमन् !

चाट बेचते कुछ सहपाठी आप के
कोई धंधा ऐसा ही अब छांटिए श्रीमन् !

आरक्षित श्रेणी में नाम आपका हो
ऐसी कोई तोप आज तो दागिए श्रीमन् !

(दो)

फूल माली ने तोड़े साहिब !
हुए सावन भी भगोड़े साहिब !

बोझा औकात से ज्यादा ढोते
लोग इक्के के घोड़े साहिब !

कई किश्तों में आत्महंता हम
मगर सबूत न छोड़े साहिब !

कथा सत्य नारायण की सुनकर
सत्य तो सबने मरोड़े साहिब !

वाह रे जुर्म तुझे क्या कहिए ?
हाय थाने भी न छोड़े साहिब !

प्यार बेहतर है करें कुत्तों से
सभ्य मानव तो तोड़े साहिब !

जिंदगी पायी गयी ऋण की तरह
हिसाब जितने भी जोड़े साहिब !

गजल की बात नहीं यह कोई
हैं ये तेवरी के कोड़े साहिब !

(तीन)

डाकुओं कौ तुम ही सहारौ थानेदार जी !
नाम खूब है रह्यौ तिहारौ थानेदार जी !

सच्चे, ईमानदार डूब गये नदी बीच
गुंड्डन कूं रोज तुम तारौ थानेदार जी !

धींगरा ते कबहूं न पेश त्यारी पड़ि पायी
बोदे, निर्बल कूं ही मारौ थानेदार जी !

आप कभी आयौं जो अपने मौहल्ला बीच
कांपि जाय गली–गलियारौ थानेदार जी !

क्या मजाल आंख कोई तुम से मिलाय जाय
रोज नयी छोकरी निहारौ थानेदार जी !

मारि–मारि घूंसा लात हड्डी–हड्डी तोड़ि देत
अकड़ै जो कोई बजमारौ थानेदार जी !

देवै नही घूंस कौई, फिर तौ जी आप कौ
फौरन ही चढ़ि जात पारौ थानेदार जी !

सच बोलिबे की अजी आदत–सी पड़ि गयी
माफ करौ कह्यौ सब हमारौ थानेदार जी !

(चार)

वही छिनरे, वही डोली के संग हैं प्यारे !
देखले ये सियासत के रंग हैं प्यारे !

टूटे मंदिर पे कोई नहीं फटकता है
पूजा 'औ' पूंजीवाद एक रंग हैं प्यारे !

किस का कद लम्बा है ईश्वर, अल्ला में
रोज इस बात पे छिड़ी जंग हैं प्यारे !

सांप मर जाये और लाठी भी नहीं टूटे
आज के युग में ये नेताई ढंग हैं प्यारे !

तू न कहे मेरी और मैं न कहूँ तेरी रे
इस हम्माम में सब नंग-धडंग हैं प्यारे !

सारे सम्पादकों के तलवे चाट डाले हैं
कुछ के छपने के यही तो ढ़ग हैं प्यारे !

कितनी नजदीक अब आगई है तेरे मौत
तेरे पावों तले बारूदी सुरंग हैं प्यारे !

सीने में आग और आँखों आंसू हैं
आजकल दुखते हुए अंग-अंग हैं प्यारे !

अभी जुबां कटी नहीं ।

पांच

जिंदगी पीर बन गयी यारो !
दुख की तासीर बन गयी यारो !

शोख रंगों की खींचा तानी में
भोंड़ी तस्वीर बन गयी यारो !

एक उलझन हमारे सीने में
कृष्ण का चीर बन गयी यारो !

ये सदी अब भी बहुत प्यासी है
सिंधु का तीर बन गयी यारो !

भूख की फसलें लोग काटेंगे
भूख जागीर बन गयी यारो !

इस सियासत को हाय क्या कहिये ?
आँख का नीर बन गयी यारो !

इस व्यवस्था में बे-ईमानों की
अच्छी तकदीर बन गयी यारो !

जिंदगी थी कभी फूलों की तरह
आज शमशीर बन गयी यारो !

छः

यूं न हो तू बे–करार, आयेगा समाजवाद
और यूं ही मरले यार, आयेगा समाजवाद ।

पेट में रोटी न हो, तन पर न हो कपड़ा मगर
गाओ सावन की मल्हार, आयेगा समाजवाद ।

हाँ खुदा की ही तरह, कागज पे है वो कहीं
जल्द लेगा अवतार, आयेगा समाजवाद ।

सब्र थोड़ा–सा रखो, हो जायेगा, हो जायेगा
काला, सफेद एकाकार, आयेगा समाजवाद ।

देखना सपने अजी छोड़ो नहीं, छोड़ो नहीं
नींद में ही हरबार, आयेगा समाजवाद ।

और भी लूटेंगे तुमको हर कदम पर देखना
सेठ, तस्कर, साहूकार, आयेगा समाजवाद ।

आप के सीने के ऊपर से चलेगी हर जगह
नेता, मंत्री जी की कार, आयेगा समाजवाद ।

आंख तर करने से बेहतर मुट्ठियां तू तान ले
हार प्यारे यूं न हार, आयेगा समाजवाद ।

अभी जुबां कटी नहीं ।

(सात)

इस धर्म भीरु देश में भगवान टोपियां
क्या गुल खिला रही हैं शैतान टोपियां ।

वातानुकूलित कमरों बैठी हैं इसलिए
इस देश के दुख दर्द से अन्जान टोपियां ।

तस्करों की खातिर हैं ये तो कश्तियां
इन्सां के डूबने का हैं सामान टोपियां ।

महलों को देखो कर रही हैं आजकल आबाद
पर झोंपड़े बना रहीं शमशान टोपियां ।

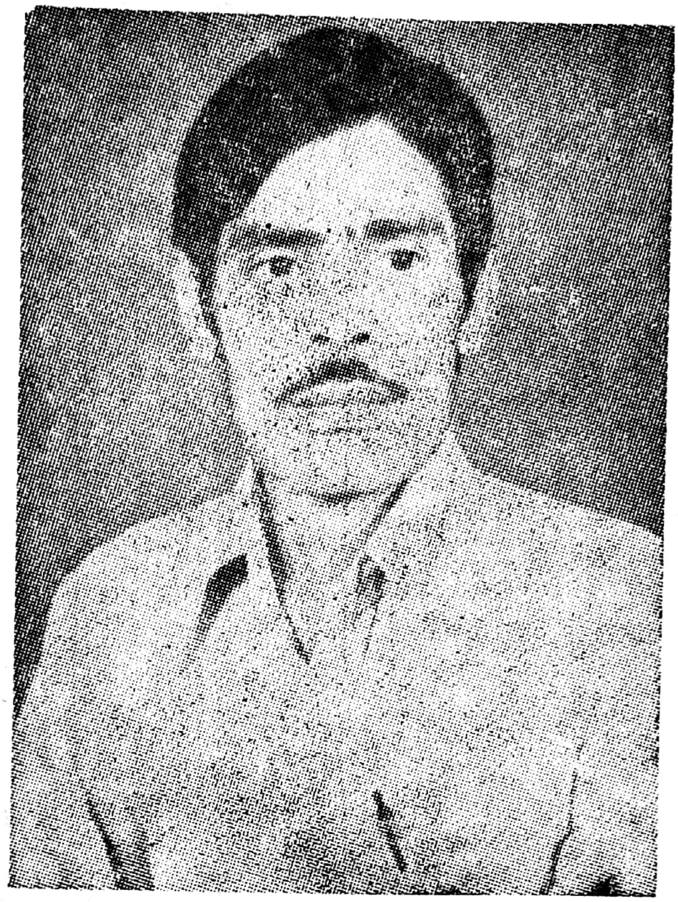
देश द्रोहियों के सरों पे हैं विराजमान
मुकुटों – सी लिये हुए आनबान टोपियां ।

रक्त चूसती हैं यारो ! फिर भी ये सफेद
अब गांधी वादियों की महान टोपियां ।

फैला के एक जाल वादों का, नारों का
कर रही हैं किस कदर हैरान टोपियां ।

जनता के बीच आती हैं कदमों को चूमती
पर उसके बाद होतीं आसमान टोपियां ।

सुरेश 'त्रस्त'



जन्म – ७ सितम्बर, १९४७ अलीगढ़

शिक्षा – इन्टर मीडियेट

लेखन – कविताएं, लघुकथा, लेख

सम्प्रति – चिकित्सक

संपर्क – ४६, आ० वि० कालौनी, सासनी गेट अलीगढ़

रचना-प्रक्रिया – भूख, गरीबी शोषण बहुत निकट से देखे व भोगे हैं। लेखन इन्हीं त्रासद स्थितियों की उपज रहा है।

अभी जुबां कटी नहीं।

(एक)

दलदल में है गाड़ी बहिना !
गाड़ीवान अनाड़ी बहिना !

दुख के पैबंदों ने जकड़ी
खुशियों की हर साड़ी बहिना !

पांव सुकोमल तेरे, संसद–
कांटों वाली झाड़ी बहिना !

देख जरा खूनी पंजों ने
बगिया आज उजाड़ी बहिना !

सांस–सांस पर दुख दर्दों की
चलती आज कुल्हाड़ी बहिना !

कहां रही है अब जीवन में
आदिम गंध पहाड़ी बहिना !

आज नहीं है ज्वार हृदय में
मंदिम–मंदिम नाड़ी बहिना !

हुयीं सरल रेखा–सी बातें–
अब तो तिरछी आड़ी बहिना !

(दो)

जीना है दुश्वार सखी री !
होते अत्याचार सखी री !

चौराहों पर इज्जत लुटती
मगर मौन सरकार सखी री !

सुख की झलक नहीं जीवन में
दर्दों की भरमार सखी री !

चोरों के संग मिले हुए हैं
सारे पहरेदार सखी री !

घिरे हुए हैं दुख दर्दों से
मन के सब उद्‌गार सखी री !

कुंठाओं का बढ़ता जाता
हर सीने पर भार सखी री !

चमन उजाड़ रहे हैं माली
सिसक रहा गुलजार सखी री !

हर चेहरा अब 'त्रस्त' यहां है
बहती अंसुवन धार सखी री ।

अभी जुबां कटी नहीं ।

तीन

नहीं नेह का आंचल भइया !
मिलती नफरत प्रतिपल भइया !

सम्हल–सम्हल कर अब चलना तू
जगह–जगह हैं दल–दल भइया !

आज सिसकती पायल भइया !
अश्कों से तर आंचल भइया !

कब बरसेंगे बादल जाने ?
सूखे सभी कमल–दल भइया !

वो करते ऐसे छल भइया !
बोते रहते विषफल भइया !

सोच–सोच हालात देश के
नैना बहते अविरल भइया !

दुख जैसे तन पर चाबुक है
अब तो हर तन घायल भइया !

उगता यहाँ आजकल भइया !
बस नारों का जंगल भइया !

(चार)

अब तो प्रतिपल घात है बाबा !
दर्दों की सौगात है बाबा !

मन की पीड़ा किसे सुनायें ?
कौन पूछता बात है बाबा ?

पीते – पीते जहर सत्य का
शख्स हुआ सुकरात है बाबा !

बादल गम के घिर–घिर आते
आंखों में बरसात है बाबा !

आदमखोर भेड़िये सब हैं
सबकी खूनी जात है बाबा !

नारेबाजी 'औ' भाषण तक
नेता की औकात है बाबा !

कहीं न सूरज उगता दीखे
तममय हुआ प्रभात है बाबा !

'त्रस्त' मिटा तम, ला तू दिनकर
अब गहराती रात है बाबा !

अभी जुबां कटी नहीं ।

(पांच)

आदमी खूं में सना है आजकल
दर्द चाकू–सा तना है आजकल।

कल्पनाएं परकटी सब हो गयीं
और आहत भावना है आजकल।

खुशियां हुईं सन्यासिनी, वनवासिनी
सहवासिनी तो वेदना है आजकल।

इसकी हर दीवार में हैं सिसकियां
ये महल खूं से बना है आजकल।

हर किसी में तिलमिलाहट–सी है एक
दर्द कुछ हद से घना है आजकल।

है सही जो मुल्क में उस आदमी की
किस कदर आलोचना है आजकल।

एक टुकड़ा सुख न मिल पाता हमें
आदमी दुख ने हना है आजकल।

हम मनाये बोलो इसको किस तरह ?
'त्रस्त' तो कुछ अनमना है आजकल।

अभी जुबां कटी नहीं।

(छः)

है हंगामा शोर आजकल भइया रे !
हुए मसीहा चोर आजकल भइया रे !

दर्द लगे है ऐसे हमको साथी-सा
जैसे चांद-चकोर आजकल भइया रे !

हम सबकी रखली हैं खुशियां राजा ने
झोली बीच बटोर आजकल भइया रे !

अब तो चाहे जिधर आदमी को देखो
बड़ा दुखी हर ओर आजकल भइया रे !

मनमानी फर्जी प्यादे अब करते हैं
हुए बड़े मुंहजोर आजकल भइया रे !

हर लमहा अब रहे मौत के हाथों में
अपनी जीवन-डोर आजकल भइया रे !

सरे-राह अब लुटती रहतीं महिलाएं
बहुत पाप घनघोर आजकल भइया रे !

'त्रस्त' कहे- अब बात बतायें हम किसकी ?
सब हैं आदमखोर आजकल भइया रे !

अभी जुबां कटी नहीं ।

सात

क्रोध की मुद्रा बनाओ दोस्तो
जड़ व्यवस्था की हिलाओ दोस्तो !

इस जगह के लोग आदमखोर हैं
आदमी को अब बचाओ दोस्तो !

जन विरोधी लोग जो, उनके खिलाफ
अब मशालों को जलाओ दोस्तो !

सांपनी करती है केवल विष वमन
दूध कितना भी पिलाओ दोस्तो !

बहुत अश्कों को पिया तुमने मगर
पीर को अब मत पचाओ दोस्तो !

जिसमें लुट जाती है इज्जत आबरु
उस सियासत को मिटाओ दोस्तो !

आज लें संकल्प जुल्मों के खिलाफ
हाथ अब आगे बढ़ाओ दोस्तो !

'त्रस्त' कीं इन मुट्ठियो में आग है
'त्रस्त' को भी आजमाओ दोस्तो !

सात

क्रोध की मुद्रा बनाओ दोस्तो
जड़ व्यवस्था को हिलाओ दोस्तो !

इस जगह के लोग आदमखोर हैं
आदमी को अब बचाओ दोस्तो !

जन विरोधी लोग जो, उनके खिलाफ
अब मशालों को जलाओ दोस्तो !

सांपनी करती है केबल विष वमन
दूध कितना भी पिलाओ दोस्तो !

बहुत अश्कों को पिया तुमने मगर
पीर को अब मत पचाओ दोस्तो !

जिसमें लुट जाती है इज्जत आबरू
उस सियासत को मिटाओ दोस्तो !

आज लें संकल्प जुल्मों के खिलाफ
हाथ अब आगे बढ़ाओ दोस्तो !

'त्रस्त' कीं इन मुट्ठियों में आग है
'त्रस्त' को भी आजमाओ दोस्तो !

अभी जुबां कटी नहीं ।

ज्ञानेन्द्र 'साज़'



जन्म – २ जुलाई, १९४२ , अलीगढ़

शिक्षा – स्नातक १९६२

लेखन – कविताएं

सम्प्रति – व्यापार

संपर्क – १७/२१२ जयगंज अलीगढ़ २०२००१

रचना-प्रक्रिया – शासन को कुशासन होते, सत्य को असत्य होते, मानव को दानव होते जब जब भी देखता हूँ, रचना लिख बैठता हूँ ।

(एक)

लूट रही सरकार, साथी जाग रे
कर कोई उपचार, साथी जाग रे।

तेरे मेरे सबके तन पर है अब तो
महंगाई की मार, साथी जाग रे।

लूट, अपहरण और डकैती से अब तो
रंगे हुए अखबार, साथी जाग रे।

सब के सब इक थैली के चट्टे–बट्टे
नेता, चौकीदार, साथी जाग रे।

आज व्यवस्था की हर कुर्सी पर प्यारे
गुंडों की भरमार, साथी जाग रे।

इक नम्बर के धंधे सबने छोड़ दिये
नम्बर दो से प्यार, साथी जाग रे।

काम नहीं आयेगीं तेरे ये डिग्री
है शिक्षा बेकार, साथी जाग रे।

प्रजातंत्र की छुरियां तुझ पर उछल रहीं
तू होजा खूंख्वार, साथी जाग रे।

(दो)

होती है लूटमार, आज पेट के लिये
गूंगी हुई सरकार, आज पेट के लिये।

अस्मत बिकाऊ चीज बन गयी है दोस्तो
है जिंदगी बाजार, आज पेट के लिये।

स्वार्थ की नगरी में अब देखिए आदर्श
होने लगे व्यापार, आज पेट के लिये।

सच्चाइयों से वास्ता इनका नहीं रहा
खामोश हैं अखबार, आज पेट के लिये।

अब चोर औ' सिपाही के रिश्ते तो देखिए
है भाई जैसा प्यार, आज पेट के लिये।

कम तोलना या ब्लैक या महंगाई बढ़ाना
है सारा कारोबार, आज पेट के लिये।

नैतिकता छोड़ दी है जमाने ने क्या कहें ?
है प्यार भी व्यभिचार, आज पेट के लिये

मंदिर में 'साज' भेड़िये मिलने लगे हैं अब
करते हैं यौनाचार, आज पेट के लिये

अभी जुबां कटी नहीं।

(तीन)

हर चीज का अभाव, कोई देखता नहीं
इस दर्द का बसाव, कोई देखता नहीं ।

बचती नहीं अब आबरू थाने के सामने
इन रक्षकों के दाव, कोई देखता नहीं ।

घरतंत्र, तानाशाही, प्रजातंत्र है मजाक
जन–जन का अब घिराव, कोई देखता नहीं ।

डाकू, लुटेरे, कातिलों, व्यभिचारियों की ओर
नेताओं का झुकाव, कोई देखता नहीं ।

ले जा रही है देश को न जाने किस तरफ ?
इस तंत्र की ये नाव, कोई देखता नहीं ।

बाहें फड़क रही हैं औ' मुठ्ठी तनी हुई
कुछ चेहरों पे है ताव, कोई देखता नहीं।

बदबू–सी आ रही है व्यवस्था के जिस्म से
सड़ने लगे हैं घाव, कोई देखता नहीं ।

मेहनतकशों के गांव में हैं भूख के ऐ 'साज़'
जलते हुए अलाव, कोई देखता नहीं ।

(चार)

मत करो अब प्यार की बातें
बस करो सरकार की बातें ।

हर जेहन को कर रहीं छलनी
आजकल अखबार की बातें ।

देवता की मूर्ति के पीछे
हो रही व्यभिचार की बातें ।

हैं फरेब, स्वार्थ और झूठ
आज शिष्टाचार की बातें ।

इस बार भी खा गयी सत्ता
वोट के अधिकार की बातें ।

राख के नीचे दबे हैं हम
हममें हैं अंगार की बातें ।

अब नहीं तो कल सुनेंगे लोग
क्रान्ति के उद्गार की बातें ।

'साज' की इस तेवरी में हैं
तीर औ' तलवार की बातें ।

अभी जुबां कटी नहीं

(पांच)

जिंदगी कितनी हसीं है दोस्तो !
पर किसी की भी नहीं है दोस्तो !

हर खुशी अब आदमी के गाल पर
एक झुर्री-सी जड़ी है दोस्तो !

भूख से लाचार औ' टूटा हुआ
मुल्क में हर आदमी है दोस्तो !

रहनुमा पीते लहू इन्सान का
भेड़ियों-सी तिश्नगी है दोस्तो !

एक हो जाओ व्यवस्था के खिलाफ
क्यूं अभी चुप्पी सधी है दोस्तो !

मुट्ठियों में पत्थरों को देखकर
हर सदन में खलबली है दोस्तो !

उस तरफ रंगरेलियों में लोग हैं
इस तरफ फाकाकशी है दोस्तो !

आदमी है तेवरी के तेवरों-सा
'साज' ने चर्चा सुनी है दोस्तो !

(छः)

हैं ये थोथी बात, महंगाई रोको
बड़े बुरे हालात, महंगाई रोको ।

रसगुल्लों की बात यहां पर कौन करे ?
मिले न रोटी, भात, महंगाई रोको ।

फटी रजाई और कड़कता जाड़ा है
कैसे काटें रात ? महंगाई रोको ।

एम०ए०, बी०ए० किया, जेब पर खाली है
हर पल खायें मात, महंगाई रोको ।

स्वारथ से हटकर कुछ सोचो नेताओ !
मानो मेरी बात, महंगाई रोको ।

हमसे सहन नहीं होते हैं अब सुन लो
बहुत सहे आघात, महंगाई रोको ।

कुछ सोचो यदि इन्क्लाब लाते हैं हम
क्या होंगे हालात ? महंगाई रोको ।

भूखे तन पर सुख के बादल कब बरसे ?
दर्द हुए बरसात, महंगाई रोको ।

अभी जुबां कटी नहीं ।

(सात)

कैसा चलन हुआ है, मेरे देश का ?
गौरव रेहन हुआ है, मेरे देश का ।

कब दिखलायी गयीं मशालें रघुवर को ?
रावण–दहन हुआ है, मेरे देश का ।

बेकारी, बदहाली औ' कंगाली से
घायल जेहन हुआ है, मेरे देश का ।

सुख औ' हर्ष आजकल हर इक चेहरे पर
जैसे कफन हुआ है, मेरे देश का ?

लोग यहां हर जगह खून के प्यासे हैं
रक्तिम–गगन हुआ है, मेरे देश का ?

खुदगर्जों, मक्कारों को कुर्सी मिलती
कैसा चयन हुआ है, मेरे देश का ?

आदर्शों की बात आप क्यूं करते हैं ?
खोटा रतन हुआ है, मेरे देश का ।

नासूरों की तरह सभ्यता रिसती है
कितना गलन हुआ है, मेरे देश का ?

रमेशराज



जन्म – १५ मार्च, १९५४, अलीगढ़

शिक्षा – स्नातकोत्तर (भूगोल)

लेखन – कविताएं, कहानियाँ, लघुकथा, लेख व्यंग्य आदि

सम्प्रति – तनाव

संपर्क – १५/१०९ ईसा नगर, अलीगढ़

रचना-प्रक्रिया – भूख, शोषण, संत्रास को अपने भीतर अम्ल की मानिंद झेला है. जब-जब गलता हूँ, तिलमिलाहट शब्दों के रूप में बाहर उबल पड़ती है।

अभी जुबां कटी नहीं।

[एक]

अब हंगामा मचा लेखनी
कोई करतब दिखा लेखनी !

मैं आदमखोरों से लड़लूं
तुझ को चाकू बना लेखनी !

जो सरपंच बने बैठे हैं
उन पे उंगली उठा लेखनी !

तुझे तोड़ना है अब सुन ले
हर इक खूनी किला लेखनी !

सब घायल हैं इस निजाम में
कौन यहाँ पर बचा लेखनी ?

मांग रहा हूं जन-खुशहाली
मैं शायर सिरफिरा लेखनी !

जो भूखे नंगे हैं शोषित
उनको रोटी जुटा लेखनी !

मैं चिंगारी फूंक रहा हूं
तू दे थोड़ी हवा लेखनी !

अभी ज़ुबां कटी नहीं।

मेरे अहसासों का अब तो
तड़प रहा है सुआ लेखनी !

तुझसे जनम–जनम का नाता
तू मेरी चिर–सखा लेखनी !

मैंने हंस–हंस जहर पिया है
मैं सुकरात–सा रहा लेखनी !

तुझको धागा बना–बना कर
मैंने हर दुख सिया लेखनी !

'धूमिल' जैसा आज जोश तू
दे मुझमें भी जगा लेखनी !

प्राण फूंक दूं मैं मुर्दों में
मेरी इतनी रजा लेखनी !

मैं पतंग हूं महा क्रान्ति की
मुझको यूं ही उड़ा लेखनी !

मैं डायनामाइट हूं ये भी
इक दिन दूंगा दिखा लेखनी !

अभी जुबां कटी नहीं ।

मैं बन्दूक हुआ जाता हूं
तू जुल्मी को उड़ा लेखनी !

तू है आग और मैं कंचन
चाहे जितना तपा लेखनी !

मेरे स्वर सब आह भरे हैं
मैं मुफलिस की सदा लेखनी !

एक कल्पनां उभर रही है
मैं रोटी, तू तवा लेखनी !

सुख की चिड़िया जिबह हो गयी
पंखों को फड़फड़ा लेखनी !

लोग मौत पर मानवता की
लगा रहे कहकहा लेखनी !

मेरा देश गुलामों का है
बार-बार यूं लगा लेखनी !

यहां सुलगती है बस नफरत
इस पर पानी गिरा लेखनी !

अभी जुबां कटी नहीं ।

भाग सुखों में वो देते हैं
तू कर इनमें गुणा लेखनी !

खतम करे जो, तो मैं जानूं
शोषण का सिलसिला लेखनी !

टूटे बत्तीसी दर्दों की
ऐसे चांटे जमा लेखनी !

मैं सूरज हूं इन्क्लाब का
मेरा इतना पता लेखनी !

इन्क्लाब के हर सलीब पर
कर दे मुझको खड़ा लेखनी !

महाजनों को देता गाली
अब के 'होरी' मिला लेखनी !

'गोबर' शोषण सहते-सहते
नक्सलवादी हुआ लेखनी !

अब पीटे 'धनियां', 'झिंगुरी' को
तो आयेगा मजा लेखनी !

अभी जुबां कटी नहीं ।

मैं हूं केवल तिनका–तिनका
मैं पानी पर तिरा लेखनी !

आज समय की शाखों पर है
मेरा तो घोंसला लेखनी !

मेरे पर जब–जब बांधे हैं
आसमान को तका लेखनी !

एक शब्द 'आग' है जिसको
हर कविता में लिखा लेखनी !

लोग मनायें खूनी उत्सव
ये कैसी है प्रथा लेखनी !

जहर घोलती सांस–सांस में
अब जनतंत्री हवा लेखनी !

बोल भला मैं कब तक देखूं
सामाजिक – दुर्दशा लेखनी !

मैं चिल्ला–चिल्ला कर हारा
बहरों की है सभा लेखनी !

अभी जुबां कटी नहीं ।

जब तक जुबां सलामत है ये
सच बोलूंगा सदा लेखनी !

आज देख ले मिरा देश ये
इक साजिश में फंसा लेखनी !

संसद में हैं लोग भेड़िये
ये क्या मैंने सुना लेखनी ?

सुख तो एक अदद लगता है
दर्द हुआ सौ गुना लेखनी !

खेल रहे हैं लोग आजकल
आदर्शों का जुआ लेखनी !

जो झूठा, मक्कार, फरेबी
वो हर युग में पुजा लेखनी !

पूछ न हमें देवता बनकर
किस–किसने है ठगा लेखनी !

राजा खाये नित रसगुल्ले
भूखी है पर प्रजा लेखनी !

अभी जुबां कटी नहीं।

मैं बसंत को बुन डालूंगा
मत ऐसे कसमसा लेखनी !

भीतर हूं दहका अंगारा
ऊपर-ऊपर बुझा लेखनी !

यूं झेला है हर तनाव को
मैं फोड़े-सा पका लेखनी !

मुझमें है हर भाव सोडियम
मैं पानी में जला लेखनी !

आल गगा दूंगा हर दिल में
मुझको तू आजमा लेखनी !

बहुत हुए चंगेजो-नादर
कौन यहाँ पर टिका लेखनी !

कल न रहेंगे जुल्म सितम ये
और न मन की व्यथा लेखनी !

अब टूटे हर इक सन्नाटा
ऐसी बातें उठा लेखनी !

अभी जुबां कटी नहीं ।